बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 215

आरसेप से परे

ओस्लो संधि पर हस्ताक्षर करने वाले इजरायल के राजनेता शिमॉन पेरेज (वह इजरायल के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति रहे) ने कहा था कि एक बार अगर आप शत्रु के साथ बातचीत करने लगते हैं तो आपको पता चलता है कि आपको इससे पहले अपने लोगों के साथ बातचीत करनी होगी। व्यापार वार्ताएं किसी शत्रु के साथ नहीं की जातीं क्योंकि व्यापार में तो सबका फायदा होना होता है। इसके बावजूद क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी (आरसेप) को लेकर चल रही लंबी तनावपूर्ण चर्चा जिस तरह खिंची है उससे यह स्पष्ट होता है सरकार को असली चर्चा भारतीय कारोबारों के बीच करनी होगी। देश का कारोबारी जगत एक और मुक्त व्यापार समझौते को लेकर चौकन्ना है। आरसेप पर हस्ताक्षर करना या इससे इनकार करना आने वाले महीनों में मौजूदा सरकार द्वारा लिया जाने वाला सबसे अहम निर्णय होगा। पूर्वी एशिया की सभी अर्थव्यवस्थाओं और ऑस्ट्रेलिया तथा आसपास के सभी देशों को शामिल करने वाले इस समूह से बाहर रहने की भी कीमत चुकानी होगी। यह क्षेत्र दुनिया की शीर्ष आर्थिक महाशक्ति बन चुका है। वैश्विक जीडीपी की 40 फीसदी हिस्सेदारी इस क्षेत्र से आती है और कारोबार में सबसे अधिक हिस्सेदारी के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि दर के मामले में भी यह शीर्ष पर है। इससे बाहर रहने का अर्थ होगा भारतीय निर्यातकों को अहम बाजार में शुल्क संबंधी तथा गैर शुल्क बाधाओं का सामना करना होगा। इस संधि में बाद में शामिल होना जोखिम भरा हो सकता है क्योंकि तब चीन भारत के प्रवेश को बाधित करने का प्रयास करेगा। देश के बाजारों को चीन तथा अन्य क्षेत्रीय देशों से होने वाले अबाध आयात से पाट दिए जाने की तुलना में क्या इससे बाहर रहने की कीमत छोटी नहीं मानी जाएगी? इस घुमाऊ सवाल को लेकर सरकार की प्रतिक्रिया की बात करें तो सरकार हस्ताक्षर करना चाहती है लेकिन वह यह भी चाहती है कि इन देशों से सस्ते आयात की बाढ़ घरेलू उत्पादकों को कारोबार से बाहर ही न कर दे। सरकार ऐसे सुरक्षा उपाय कर पाएगी या नहीं यह देखना होगा। असली परीक्षा तब हो सकती है जब उसे बिना इन सुरक्षा उपायों के हस्ताक्षर करने को कहा जाए। सच तो यह है कि वास्तविक मुद्दे, हस्ताक्षर करने या न करने जैसे दो पहलुओं से एकदम अलग हैं।

असल बात यह है कि आरसेप सदस्यता पर हस्ताक्षर करने के बावजूद देश को लाभ मिलना कैसे सुनिश्चित किया जाए। दूसरे शब्दों में घरेलू अर्थव्यवस्था को बढ़ी हुई आयात प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिए उसे किफायत बढ़ाने, बिजली की तार्किक कीमत तय करने (किसानों को सब्सिडी देने के लिए औद्योगिक उपभोक्ताओं पर कर लगाना), उत्पादकता बढ़ाने (मसलन यदि डेरी क्षेत्र में न्यूजीलैंड से प्रतिस्पर्धा मिलती है तो), मानकों और प्रमाणन में सुधार करने जैसे कदम उठाने होंगे ताकि गैर शुल्क व्यापार बाधाओं से पार पाया जा सके और वित्तीय लागत कम की जा सके जो अभी बहुत अधिक है। आखिर में उस मौद्रिक नीति से निजात पानी होगी जिसमें अधिमूल्यित रुपया तमाम निर्यातों पर कर बढ़ाता है और आयात सस्ता होता है। स्वाभाविक बात है कि इसमें व्यवस्थागत बदलाव शामिल है और यह रातोरात नहीं हो सकता। इस दिशा में काम सात साल पहले शुरू हो जाना चाहिए था जब आरसेप को लेकर वार्ता आरंभ हुई। आखिरकार, यदि इस क्षेत्र की हर दूसरी अर्थव्यवस्था चाहे वह वियतनाम हो या कंबोडिया, फिलीपींस या म्यांमार, खुले क्षेत्रीय व्यापार के माहौल में काम कर सकती है तो समस्या आरसेप या अन्य कोई मुक्त व्यापार समझौता नहीं बल्कि वह देश है जिसने हस्ताक्षर तो कर दिए लेकिन घरेलू अर्थव्यवस्था की नि:शक्तता से नहीं निपट सका। भारत को बदलाव लाना होगा और सबसे अहम बचाव यही होगा कि वह जरूरी घरेलू बदलावों को अंजाम देने के लिए समय हासिल कर सके। चीन ने विश्व व्यापार संगठन में शामिल होने के पहले यही किया था। बाद के वर्षों में उसने जबरदस्त सफलता हासिल की। भारत को उससे सबक लेना चाहिए। ऐसे में इस बातचीत का सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि अर्थव्यवस्था को मुक्त व्यापार के माहौल के लिए तैयार करने को लेकर कुछ नहीं किया जा रहा है। बिजली कीमतों को लेकर कोई सुधार नहीं किया गया है। गो संरक्षण के इस दौर में कोई डेरी को किफायती बनाने की बात नहीं कर रहा। सरकार के तमाम प्रभावशाली लोग अधिमूल्यित रुपये की लागत से अनभिज्ञ नजर आ रहे हैं। ऐसे में रिजर्व बैंक की ब्याज दर कटौती भी निष्प्रभावी साबित हो रही है। अगर यह सब नहीं बदलता है तो भारत आरसेप पर हस्ताक्षर करे या नहीं, कोई खास फर्क नहीं पड़ता। अर्थव्यवस्था का कमजोर प्रदर्शन जारी रहेगा।

साप्ताहिक मंथन
टी. एन. नाइनन

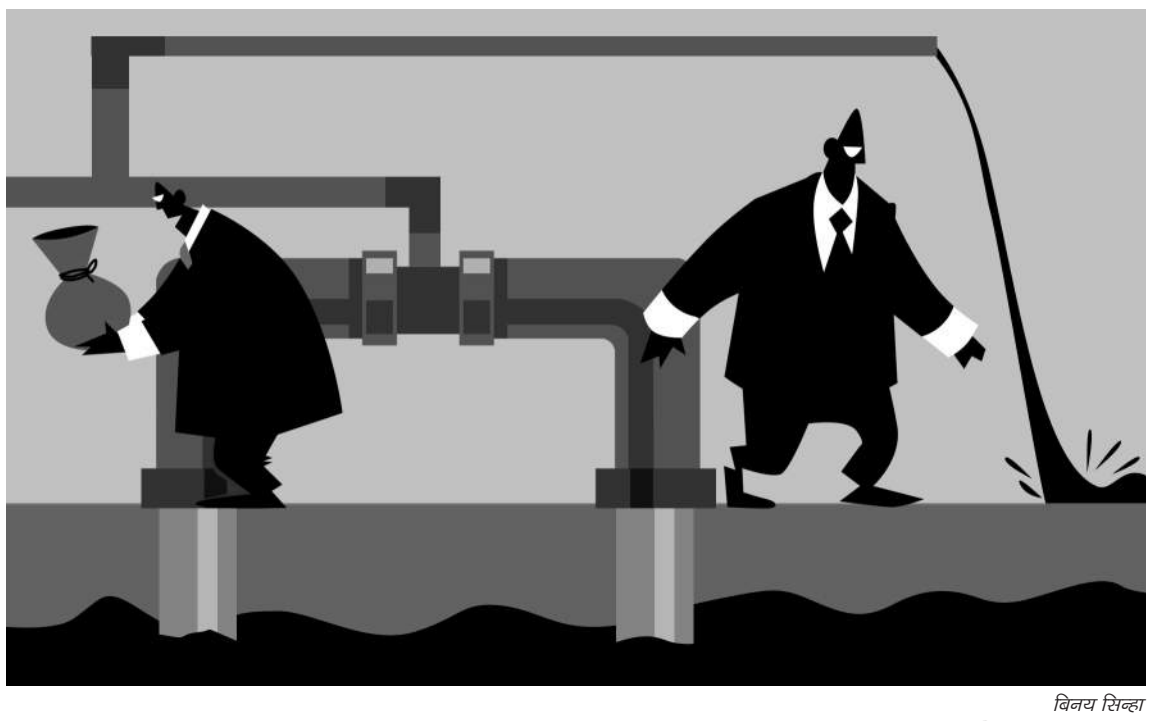

बिनय सिन्हा

आपसी समन्वय से होगा जल संकट का निदान

जल जीवन अभियान की सफलता के लिए पूरे देश की सरकारों को नागरिक समाज के संगठनों के साथ करीबी रिश्ता बनाना होगा। विश्वविद्यालयों और अकादमिक जगत की बेहतरीन प्रतिभाओं को भी अपने साथ जोड़ना होगा। बता रहे हैं **मिहिर शाह**

पानी को ढांचागत क्षेत्र में भारत के सबसे अहम संसाधन के तौर पर समुचित मान्यता नहीं मिली है। इससे भी कम महत्त्व इस बात को दिया जाता है कि पानी के प्रबंधन से जुड़े सुधार सबसे कम हुए हैं। सुधारों का अभाव न केवल करोड़ों लोगों की जिंदगी एवं आजीविका को खतरे में डाल सकता है बल्कि भारत की आर्थिक वृद्धि को भी गंभीर नुकसान पहुंचा सकता है। आजादी के बाद से ही जल प्रबंधन ऐसी स्थिति का शिकार रहा है कि पानी पीने वाले बाएं हाथ को पता नहीं होता कि सिंचाई वाला दूसरा हाथ क्या कर रहा है और सतही जल के दाएं पैर को नहीं पता होता कि भूमिगत जल का बायां पैर कहां पर है?

ऐसे अनगिनत मौके हैं जहां पेयजल स्रोत इसलिए सूख गया है कि किसानों ने उसका इस्तेमाल अपनी फसलों की सिंचाई के लिए भी शुरू कर दिया। भूमिगत जल का हद से ज्यादा दोहन होने से नदियों के सूखने की रफ्तार बढ़ गई है क्योंकि भूमिगत जल ही मॉनसून खत्म होने के बाद नदियों में प्रवाह बनाए रखता है। नदी प्रवाह और उसकी गुणवत्ता भी जलग्रहण क्षेत्रों के नष्ट होने से प्रभावित हुई है। बाढ़ आने की आवृत्ति भी बढ़ गई है क्योंकि अतिरिक्त जल की निकासी के प्राकृतिक इंतजाम या तो अवरुद्ध कर दिए गए हैं या अतिक्रमण का शिकार हो गए हैं।

पानी से संबंधित हरेक चुनौती की जड़ें उस तरीके से जुड़ी हैं जिसके आधार पर देश में मौजूद जलभंडारों का विभाजन किया गया है। तमाम क्षेत्रों के बीच कोई सार्थक संवाद नहीं होने का भी इस पर असर पड़ा है। ये हालात पैदा होने की वजह यह है कि हमने पानी के बहुआयामी चरित्र को ठीक से नहीं समझा है। सतही जल के प्रबंधन का दायित्व केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) के पास है जबकि केंद्रीय भू-जल बोर्ड (सीजीडब्ल्यूबी) भूमिगत जल की निगरानी करता है। हरेक राज्य में भी इनके समकक्ष संगठन मौजूद हैं। इन संगठनों के गठन के बाद से ही अब तक इनमें कोई सुधार नहीं हुआ है। वे काफी हद तक स्वतंत्र तरीके से काम करते रहे हैं और अक्सर एक-दूसरे के खिलाफ भी खड़े हो जाते हैं।

त्रासद स्थिति है कि भारत में पानी का दो-तिहाई से भी अधिक पानी भूजल होने के बावजूद इसकी बढ़ती अहमियत के उलट केंद्र एवं राज्यों के स्तर पर भूजल विभाग कमजोर होते गए हैं। इससे भी बुरा यह है कि सतही जल मुख्य रूप से सिविल इंजीनियरों के भरोसे है जबकि भूजल की देखरेख करने वाले जल-भूविज्ञानी इस बात को पूरी तरह नजरअंदाज करते हैं कि पानी की बेहतर साज-संभाल के लिए विभिन्न विषयों के पेशेवरों की जरूरत है। अपनी नदियों में नई जान फूंकने की भारत की प्रतिबद्धता और जन समर्थन के बावजूद हमारे पास देश में कहीं भी जल प्रबंधन से जुड़े किसी भी संगठन में कोई नदी पारिस्थितिकी-विशेषज्ञ या पारिस्थितिकी अर्थशास्त्री नहीं रहा है। पानी की अधिक जरूरत वाली फसलों चावल, गेहूं और गन्ना के प्रभुत्व वाले कृषि क्षेत्र में पानी का सबसे ज्यादा उपभोग होता है लेकिन जल प्रबंधन कर रही अफसरशाही में एक भी कृषि-विज्ञानी नहीं है। पानी की बेहतर देखभाल वहीं हो पाई है जहां स्थानीय समुदाय ने भी खुलकर साथ दिया है, चाहे वह भूमिगत जल का प्रबंधन हो या कमान एरिया विकास का मामला हो, लेकिन जल विभागों ने कभी भी किसी सामाजिक संगठनकर्ता को जगह नहीं दी है। सरकारों ने बाहरी सरकारों के साथ संस्थागत साझेदारी भी नहीं बनाई है जिससे उसे जरूरी बौद्धिक एवं सामाजिक पूंजी- नागरिक समाज, बुद्धिजीवी या कंपनी जगत का साथ मिल सकता था।

भारत सरकार की तरफ से सीडब्ल्यूसी एवं सीजीडब्ल्यूबी के पुनर्गठन के लिए बनी समिति ने 2015-16 में जल प्रबंधन के लिए एकदम नया ढांचा बनाने का सुझाव दिया था। इसकी अध्यक्षता करते हुए मैंने सीडब्ल्यूसी एवं सीजीडब्ल्यूबी के विलय का प्रस्ताव रखते हुए एकदम नया राष्ट्रीय जल आयोग (एनडब्ल्यूसी) बनाने की बात कही थी। उस रिपोर्ट को सरकार के भीतर एवं बाहर खूब सराहा गया। जल संसाधन मंत्रालय, नीति आयोग एवं प्रधानमंत्री कार्यालय ने भी इसकी वकालत की थी। भारत में सामाजिक विज्ञान के अग्रणी जर्नल इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली ने इस रिपोर्ट के तमाम पहलुओं को समर्पित एक समूचा अंक ही निकाला था। हालांकि इस रिपोर्ट पर सरकार की तरफ से ठोस कार्रवाई का अब भी इंतजार है।

जलशक्ति मंत्रालय का गठन पहला अहम कदम है। सिंचाई एवं पेयजल विभागों को एक मंत्रालय में ला दिया गया है। अब दोनों विभागों को एक दूसरे से करीबी तालमेल बिठाते हुए काम करना होगा। असली परीक्षा उस समय होगी जब महत्त्वाकांक्षी जल जीवन अभियान लागू होना शुरू होगा। देशवासियों को साफ एवं सुरक्षित पेयजल मुहैया कराने का अकेला तरीका यही है कि हम जलस्रोत को मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों स्तरों पर टिकाऊ बनाए रखें। इसके लिए जरूरी पानी का बड़ा हिस्सा जलभंडारों से पहुंचाया जाएगा जिनका इस्तेमाल सिंचाई के लिए भी होता है। सिंचाई एवं पेयजल विभागों के साथ मिलकर काम किए बगैर जलभंडार को टिकाऊ नहीं बनाए रखा जा सकता है। इसके अलावा भागीदारी-आधारित प्रबंधन के बगैर इन जलभंडारों में भूमिगत जल खत्म होने लगेगा जिससे हालात बिगड़ते जाएंगे। इसके लिए देश भर में तेजी से गायब हो रहे भूजल विभागों को सशक्त करने के साथ भूजल के प्रबंधन में प्राथमिक हितधारकों को करीब लाना होगा।

अगर जल जीवन अभियान को सफल होना है तो पूरे देश की सरकारों को नागरिक समाज के संगठनों के साथ करीबी रिश्ता बनाना होगा। इसके अलावा विश्वविद्यालयों एवं अकादमिक जगत की बेहतरीन प्रतिभाओं को भी अपने साथ जोड़ना होगा। जल भंडारों का मानचित्रण एवं प्रबंधन का विशद कार्य इस अभियान की कामयाबी के लिए एक पूर्व-शर्त है और इसे अकेले सरकार ही अंजाम नहीं दे सकती है। सबसे बड़ी बात, किसानों को इस अभियान में केंद्रीय भूमिका देनी होगी। एक बार वे अपने खेतों के नीचे मौजूद पानी के स्वभाव को समझ लेंगें तो वे अपनी फसलों के चयन एवं पानी के इस्तेमाल में कहीं बेहतर फैसला कर पाएंगे। लेकिन जल प्रबंधन में सबसे अहम बदलाव भारत सरकार की फसल खरीद नीतियों में करने की होगी। किसानों को निम्न जल उपयोग वाली फसलों का एक स्थिर बाजार नहीं मुहैया कराने तक जल जीवन अभियान के तहत चिह्नित जलभंडारों का अत्यधिक दोहन होता रहेगा और भारत के लोगों के लिए जल सुरक्षा एक सपना ही बना रहेगा। इसका मतलब है कि कृषि, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण और महिला एवं बाल विकास मंत्रालयों को भी जल शक्ति मंत्रालय के साथ करीबी तालमेल बिठाने की जरूरत होगी। केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर यह काम करना होगा।

(लेखक शिव नाडर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एवं योजना आयोग के पूर्व सदस्य हैं)

व्हिसलब्लोअर से जुड़ी घटनाओं का हो अनुभवजनित अध्ययन

एक बार फिर एक सूचीबद्ध कंपनी के खिलाफ एक व्हिसलब्लोअर ने शिकायत की है। एक बार फिर हालात को संभालने की घबराहट भरी कवायद नजर आएगी। हो सकता है इससे कुछ हासिल हो या न भी हो। बहरहाल नीति निर्माताओं को एक आवश्यकता पर काम करना होगा: व्हिसलब्लोअर नीति को लेकर एक ऐसे कानूनी ढांचे का निर्माण जो इस अवधारणा के तमाम पहलुओं से निपटता हो।

व्हिसलब्लोअर की ऐसी शिकायतों से निपटने के तमाम कानून और प्रक्रियाएं स्वत: स्फूर्त ढंग से विकसित हुई हैं और इन्हें कानूनी सहायता प्राप्त नहीं है। कंपनी कानून और प्रतिभूति नियमन के लिए निकायों के भीतर एक व्हिसलब्लोअर नीति की आवश्यकता है। इसके बावजूद व्हिसलब्लोअर का काम और इनका प्रबंधन दोनों अत्यंत नाजुक क्षेत्र हैं। अगर गलत तरीके से प्रबंधन किया गया तो यह उन संस्थानों में लोगों को शिकार बनाने का जरिया बन सकता है जहां जी हुजूरी करने वालों का बोलबाला है। या फिर इसके चलते पूरे संगठन तंत्र को शिकार बनाया जा सकता है।

एक वक्त था जब भारत सरकार की स्पष्ट नीति थी जिसके तहत गुमनाम या छद्म शिकायतों की अनदेखी की जाती थी। जब तक शिकायत किसी व्यक्ति द्वारा नहीं की जाती थी तब तक जांच नहीं होती थी। सार्वजनिक सेवा में काम के हर घंटे के दौरान ऐसे निर्णय लेने पड़ते हैं जो किसी को निराश करते हैं। ऐसे में एक संस्थान तब तक नहीं चल सकता है जब तक कि ऐसे निर्णयों के कारण हुई निराशा को लेकर संरक्षण की व्यवस्था न हो। इसके बावजूद गुमनाम शिकायतों या पत्रों को आधार बनाकर उठाए जाने वाले गंभीर कदमों की कोई कमी नहीं। अब इसमें छद्म शिकायतें भी शामिल हो गई हैं। शिकायत की विषयवस्तु जितनी गंभीर होती है, गुमनाम या छद्म होने के आधार पर उस शिकायत की अनदेखी करना उतना ही मुश्किल होता है।

कॉर्पोरेट बोर्ड में इस तरह की शिकायत और अधिक देखने को मिलती हैं। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि किसी भी स्रोत से आ रहा प्रकाश रौशनी दे सकता है। ऐसे में जब शिकायत गुमनाम या छद्म होती है तो निदेशक मंडल को सीईओ के व्यक्तित्व और संस्थान में काम के माहौल पर ध्यान देना चाहिए। सीईओ जितना मजबूत (पढ़ें स्वेच्छाचारी) होगा, शिकायतकर्ता के लिए अपनी पहचान छिपाना उतना ही आवश्यक होगा। सीईओ जितना समावेशी और समायोजन करने वाला होगा और वह कार्यस्थल पर विविधता का जितना हामी हो, निदेशक मंडल को गुमनाम या छद्म शिकायतों को लेकर उतनी ही सख्ती बरतनी चाहिए। हालांकि यह कहना आसान है करना मुश्किल।

किसी शिकायत की जांच में एक भावना बहुत गहरे तक शामिल रहती है। वह है यह जानने की इच्छा कि आखिर शिकायतकर्ता कौन है। नेतृत्व जितना सख्त होगा, व्हिसलब्लोअर की सुरक्षा को उतना ही जोखिम होगा। व्हिसलब्लोअर का संरक्षण और उसे लेकर संगठन के रवैये से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि संगठन की प्रकृति क्या है। जो एक व्यक्ति के लिए सुधारक है वह दूसरे के लिए धोखेबाज हो सकता है।

बाअदब
सोमशेखर सुंदरेशन

व्हिसलब्लोअर की शिकायतों से निपटने के लिए आदर्श तरीका अपनाने और इन शिकायतों से निपटने के संगठनों के तरीकों पर कानूनी दृष्टि को देखना इस विषय में कानून प्रवर्तन की दिशा में काफी अहम हो सकता है

अमेरिका की कारोबारी जगत से जुड़ी नीतियों ने दुनिया को सोचने पर मजबूर किया। उसने व्हिसलब्लोअर की चिंताओं का इस्तेमाल कॉर्पोरेट जगत के भ्रष्टाचार से जुड़ी चिंताओं से निपटने में किया लेकिन जब मामला सरकार की गड़बड़ियों से जुड़े मामले उजागर करने का होता है तो अमेरिका का अधिनायकवादी स्वरूप सामने आता है। एडवर्ड स्नोडेन तथा उनके जैसे अनेक लोगों की दुर्दशा इसका उदाहरण है। समान सोच वाले ऐसे तमाम लोग जेलों में कैद हैं। अमेरिका के मौजूदा राष्ट्रपति अपने कार्यालय में व्हिसलब्लोअर की भरोसेमंद शिकायतों की जांच न होने देने के हिमायती हैं।

मौजूदा समय में जिन कंपनियों का सरकार से कोई लेनादेना नहीं है उन्हें भी व्हिसल ब्लोअर की शिकायतों से निपटना है। बल्कि उन्हें एक ऐसा ढांचा तैयार करना चाहिए जहां शिकायतकर्ता बिना किसी भय या अपनी पहचान की आशंका के बिना आकर शिकायत कर सके। अपारदर्शी तरीके से की गई शिकायतों को गंभीरता से न लेने से आगे बढ़ते हुए बाजार अब इसे अवैध मानने तक आ पहुंचा है। अब मांग यह की जा रही है व्हिसल ब्लोअर की पहचान सुनिश्चित हो।

अब वक्त आ चुका है कि इस बात का व्यापक अनुभवजनित अध्ययन किया जाए कि देश में व्हिसलब्लोअर नीतियों का किस प्रकार इस्तेमाल और दुरुपयोग हो रहा है तथा कॉर्पोरेट जगत इनसे संगठनात्मक रूप से कैसे निपट रहा है। व्हिसलब्लोअर की शिकायतों से निपटने के लिए आदर्श तरीका अपनाने और इन शिकायतों से निपटने के संगठनों के तरीकों पर कानूनी दृष्टि को देखना इस विषय में कानून प्रवर्तन की दिशा में काफी अहम हो सकता है। आज निदेशक मंडलों पर भी आरोप लगते हैं कि वे इन शिकायतों से सही ढंग से नहीं निपटते। कहा जाता है कि वे या तो सतही शिकायतों को अत्यधिक गंभीरता से ले लेते हैं या फिर अहम शिकायतों को गंभीरता से नहीं लेते। इनसे निपटने को लेकर कानून में जितनी अपारदर्शिता रहेगी, देश में कारोबारी सुगमता की स्थिति भी उतनी ही खराब रहेगी।

कानाफूसी

औपनिवेशिक विरासत

मध्य प्रदेश सरकार 'कलेक्टर' पदनाम बदलना चाहती है और इसके लिए उसने बुद्धिजीवियों और आम जनता से सुझाव आमंत्रित किए हैं। पिछले दिनों प्रदेश के जनसंपर्क मंत्री पी सी शर्मा ने कहा कि कलेक्टर शब्द ब्रिटिश शासन की देन है जहां यह उस व्यक्ति के लिए इस्तेमाल किया जाता था जो अंग्रेजी हुकूमत के लिए राजस्व संग्रह करने का काम करता था। उन्होंने कहा कि अब जबकि कलेक्टर की भूमिका बदल गई है तो यह पदनाम भी अप्रासंगिक हो गया है। सरकारी सूत्रों के मुताबिक अधिकांश अफसरशाह इस पद के लिए 'जिला प्रशासक' के नाम पर सहमत हो गए हैं लेकिन अभी अंतिम निर्णय लिया जाना बाकी है। मुख्यमंत्री कमलनाथ ने पद संभालते ही कहा था कि वह इस औपनिवेशिक झलक वाले पदनाम को बदलना चाहते हैं।

भाषा प्रेमी फडणवीस

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस को स्थानीय भाषाओं से लगाव है। विधानसभा चुनाव नतीजों में भारतीय जनता पार्टी की जीत के बाद मीडिया से बातचीत के दौरान फडणवीस ने स्थानीय पत्रकारों से मराठी भाषा में अपनी बात कहनी शुरू की। उसके बाद उन्होंने यह कहते हुए हिंदी में बोलना शुरू किया कि हिंदी चैनलों को भी तो चलना है। बहरहाल बाद में जब उनसे अंग्रेजी में टिप्पणी करने को कहा गया तो उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि वह अंग्रेजी केवल तब बोलते हैं जब श्रोता समूह ऐसा हो जिसे मराठी और हिंदी न आती हो या फिर जब वह विदेश में हों।

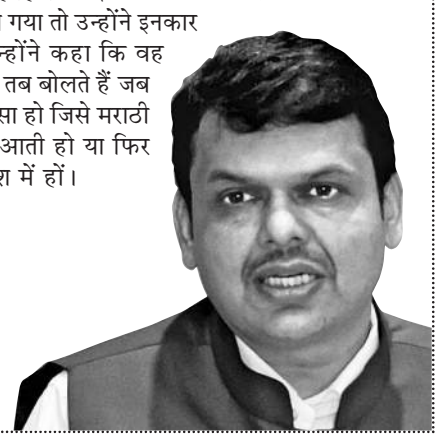

आपका पक्ष

महिलाओं का योगदान जरूरी

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती है। वर्तमान में महिलाओं की हर क्षेत्र में भूमिका को देखते हुए यह और भी जरूरी है कि सभी महिलाओं को आगे बढ़ने का मौका और आधारभूत जरूरत उपलब्ध कराई जाए। अभी बहुत कम प्रतिशत महिलाएं ही अर्थव्यवस्था में योगदान दे रही हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता की दर 64.46 प्रतिशत तथा पुरुष साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत है। अत: महिलाओं को भी शिक्षा सहित अन्य क्षेत्रों में समान रूप से अवसर प्रदान करने की जरूरत है। स्कूलों में सभी बच्चियों का दाखिला नहीं हो पाता है। इसके अलावा कई बच्चियां बीच में स्कूल छोड़ देती हैं। एक सर्वे के अनुसार 15 से 24 वर्ष की आयु की युवतियों की बेरोजगारी दर 11.5 प्रतिशत है, जबकि समान आयु के युवाओं में यह 9.8 प्रतिशत है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि देश में अभी 14.5 करोड़ महिलाएं अशिक्षित हैं। महिलाओं को शिक्षित करने से ही दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या आदि से छुटकारा पाया जा सकेगा। एक तरफ जहां एस्टर डफ्लो जैसी महिलाएं नोबेल पुरस्कार जीत रही हैं, वहीं दूसरी तरफ ऐसी महिलाएं भी हैं जो अशिक्षा के कारण दयनीय जीवन जी रही हैं। सरकार को महिलाओं से संबंधित योजनाओं की समीक्षा करने और इसका सही क्रियान्वयन करने पर जोर दे।

संगीता चौधरी, जयपुर

देश के समुचित विकास के लिए महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की जरूरत है

प्रदूषण मुक्त दीवाली मनाने का संकल्प

दीवाली में पटाखे जलाना भले ही खुशी को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता हो, लेकिन पर्यावरण के लिहाज से यह सही नहीं है। पटाखे जलाने से प्रदूषण के स्तर में काफी वृद्धि हो जाती है। ग्लोबल वॉर्मिंग की समस्या वायुमंडल में हानिकारक गैसों की बढ़ती मात्रा का परिणाम है। दीवाली पर पटाखे जलाने का भी वातावरण पर बिल्कुल वैसा ही प्रभाव पड़ता है। पटाखों को जलाने से निकलने वाला धुआं खतरनाक होता है तथा यह वायुमंडल में हानिकारक गैसों के स्तर में वृद्धि करता है। वाहनों और कारखानों से निकलने वाले धुएं से प्रदूषण को नियंत्रित करना काफी मुश्किल है। लेकिन दीवाली पर पटाखे नहीं जला कर हम प्रदूषण को नियंत्रित कर सकते हैं। पटाखे से निकलने वाले हानिकारक धुएं से सांस संबंधी बीमारियां भी उत्पन्न होती है। इससे पशु-पक्षी तथा जीव-जंतु भी प्रभावित होते हैं। वर्तमान में धुएं के बादल ने आसमान को ढंक रखा है। अत: इस दीवाली में मिट्टी के दीप जलाने, पटाखे नहीं जलाने तथा प्रदूषण मुक्त त्योहार मनाने का संकल्प लेना चाहिए।

अनु मिश्रा, सीवान

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।